Gyanvividha, Vol.-2; Issue-3 (July-Sept.) 2025 : PP-01-07

ज्ञानविविधा

कला, मानविकी और सामाजिक विज्ञान की सहकर्मी-समीक्षित, मूल्यांकित, त्रैमासिक शोध पत्रिका

ISSN : 3048-4537(Online)
3049-2327(Print)
IIFS Impact Factor-2.25
Vol.-2; Issue-3 (July-Sept.) 2025
Page No.- 01-07
©2025 Gyanvividha
https://journal.gyanvividha.com

महेंद्र कुमार मिठारवाल
सहायक आचार्य, भूगोल विभाग,
श्री लाल बहादुर शास्त्री कन्या महाविधालय,श्रीमाधोपुर,सीकर,(राजस्थान) पिनकोड-332715.

Corresponding Author :

महेंद्र कुमार मिठारवाल
सहायक आचार्य, भूगोल विभाग,
श्री लाल बहादुर शास्त्री कन्या महाविधालय,श्रीमाधोपुर,सीकर,(राजस्थान) पिनकोड-332715.

राजस्थान में बढ़ता मरुस्थलीकरण : एक गंभीर पर्यावरणीय संकट

1. प्रस्तावना : आज विश्व भर में मरुस्थलीकरण एक गंभीर पर्यावरणीय समस्या बन चुकी है। भारत के संदर्भ में यदि बात करें, तो राजस्थान इस संकट से सर्वाधिक प्रभावित राज्य है। राज्य का एक बड़ा भाग पहले से ही थार मरुस्थल के अधीन है, परंतु हाल के वर्षों में मरुस्थलीकरण की गति में तीव्र वृद्धि हुई है। भूमि का उपजाऊ स्वरुप तेजी से समाप्त हो रहा है, जिससे न केवल कृषि उत्पादन पर प्रभाव पड़ रहा है, बल्कि मानव जीवन, पशुपालन, जलस्तर और जैव विविधता भी संकट में पड़ रही है। यह लेख राजस्थान में बढ़ते मरुस्थलीकरण की गहराई से समीक्षा करता है तथा इसके कारणों, प्रभावों और संभावित समाधान की खोज करता है।राजस्थान, भारत का सबसे बड़ा राज्य, अपनी भौगोलिक विविधताओं, ऐतिहासिक धरोहरों और सांस्कृतिक विरासत के लिए प्रसिद्ध है। लेकिन आज यह राज्य एक गंभीर पर्यावरणीय संकट से जूझ रहा है — मरुस्थलीकरण। मरुस्थलीकरण वह प्रक्रिया है जिसमें उपजाऊ भूमि धीरे-धीरे बंजर में परिवर्तित हो जाती है, और राजस्थान में यह समस्या दिनों-दिन विकराल रुप धारण करती जा रही है। जलवायु परिवर्तन, अनियमित मानसून, अत्यधिक चराई, वन क्षेत्र की कटाई और अनियंत्रित भूमिगत जल दोहन जैसे मानवीय और प्राकृतिक कारण इस संकट को और गहरा बना रहे हैं। (शर्मा, आर. के. 2019).

मरुस्थलीकरण की प्रक्रिया प्राकृतिक और मानवजन्य दोनों कारणों से संचालित होती है। राजस्थान की भौगोलिक स्थिति, कम वर्षा, उच्च तापमान, तेज हवाएँ, और रेत के तूफ़ान इस प्रक्रिया को प्राकृतिक रुप से बढ़ावा देते हैं। वहीं दूसरी ओर, जनसंख्या वृद्धि, वनों की कटाई, अति-चराई, जल का अत्यधिक दोहन, और असंवेदनशील कृषि पद्धतियाँ इस संकट को और अधिक विकराल बना रही हैं। राजस्थान के थार क्षेत्र में यह समस्या विशेष रुप से गंभीर है, जहाँ रेत के

टीले बढ़ते जा रहे हैं और हरित भूमि सिकुड़ती जा रही है। इससे न केवल कृषि योग्य भूमि कम हो रही है, बल्कि आजीविका, जैव विविधता और पारिस्थितिक संतुलन पर भी प्रतिकूल प्रभाव पड़ रहा है। यदि समय रहते प्रभावी कदम नहीं उठाए गए, तो यह संकट राज्य की सामाजिक-आर्थिक स्थिरता को भी प्रभावित कर सकता है। अतः यह आवश्यक हो गया है कि हम मरुस्थलीकरण के कारणों, प्रभावों और समाधान की ओर गंभीरता से ध्यान दें ताकि आने वाली पीढ़ियों को एक सुरक्षित और समृद्ध पर्यावरण मिल सके।

2. मरुस्थलीकरण की परिभाषा व वैश्विक परिप्रेक्ष्य :-

मरुस्थलीकरण एक पर्यावरणीय प्रक्रिया है, जिसके अंतर्गत उपजाऊ या अर्ध-उपजाऊ भूमि धीरे-धीरे अपनी उत्पादकता खो बैठती है और अंततः एक बंजर या रेगिस्तानी क्षेत्र में परिवर्तित हो जाती है। यह प्रक्रिया मुख्यतः मानवीय क्रियाकलापों और जलवायु परिवर्तन के कारण होती है। संयुक्त राष्ट्र मरुस्थलीकरण रोकथाम संधि (UNCCD) के अनुसार, "मरुस्थलीकरण उन भू-क्षेत्रों में भूमि क्षरण की प्रक्रिया है जो शुष्क, अर्द्ध-शुष्क तथा सूखा प्रवण क्षेत्रों में स्थित होते हैं।" (2. मीणा, एस. एल. 2020)

वैश्विक स्तर पर मरुस्थलीकरण एक गंभीर संकट बनता जा रहा है। संयुक्त राष्ट्र के अनुसार, विश्व की लगभग 40% भूमि शुष्क व अर्द्ध-शुष्क क्षेत्रों में आती है, जहां लगभग दो अरब से अधिक जनसंख्या निवास करती है। अफ्रीका, एशिया, दक्षिण अमेरिका और कुछ यूरोपीय देशों के कई हिस्से मरुस्थलीकरण से अत्यधिक प्रभावित हो चुके हैं। विशेष रूप से साहेल क्षेत्र (अफ्रीका), मध्य एशिया और भारत के पश्चिमी राज्य (जैसे राजस्थान) इस संकट के केंद्र में हैं। मानवजनित गतिविधियाँ जैसे—अत्यधिक कृषि, वनों की कटाई, अतिचराई, जल-स्रोतों का दुरुपयोग, और असंतुलित औद्योगिक विकास इस प्रक्रिया को तेज़ करते हैं। साथ ही, जलवायु परिवर्तन के चलते वर्षा में अस्थिरता, तापमान वृद्धि और सूखा पड़ने की आवृत्ति में बढ़ोतरी, मरुस्थलीकरण को और अधिक जटिल बना रही है।

अतः मरुस्थलीकरण अब केवल एक स्थानीय या क्षेत्रीय समस्या नहीं रह गई है, बल्कि यह वैश्विक पर्यावरणीय और सामाजिक संकट का रूप ले चुकी है, जिससे जैव विविधता, खाद्य सुरक्षा, जल संसाधन और मानव आजीविका पर व्यापक प्रभाव पड़ रहा है।

3. राजस्थान में मरुस्थलीकरण की वर्तमान स्थिति

राजस्थान भारत का सबसे बड़ा राज्य है, जिसकी लगभग 60 प्रतिशत भूमि थार मरुस्थल के अंतर्गत आती है। यहाँ मरुस्थलीकरण की प्रक्रिया लगातार बढ़ती जा रही है, जो न केवल पर्यावरण के लिए, बल्कि कृषि, पशुपालन और मानव जीवन के लिए भी गंभीर चुनौती बन चुकी है। वर्तमान स्थिति यह है कि राज्य की लगभग 61 प्रतिशत भूमि मरुस्थलीकरण से प्रभावित है, जिसमें जैसलमेर, बीकानेर, बाड़मेर, जोधपुर और नागौर ज़िले सबसे अधिक संवेदनशील हैं।(गुप्ता, म. 2021).

मरुस्थलीकरण की वर्तमान गति का मुख्य कारण असंतुलित भूमि उपयोग, अंधाधुंध जल दोहन, वनस्पति आवरण की कमी, और चराई का अत्यधिक दबाव है। इसके अलावा, बढ़ते तापमान, वर्षा में कमी और मौसमी असंतुलन ने इस प्रक्रिया को और तेज़ कर दिया है। कई क्षेत्रों में उपजाऊ कृषि भूमि धीरे-धीरे रेतीली बंजर ज़मीन में बदलती जा रही है, जिससे खाद्य सुरक्षा और आजीविका दोनों पर खतरा उत्पन्न हो रहा है। राज्य सरकार और विभिन्न संस्थानों द्वारा मरुस्थलीकरण को रोकने के प्रयास तो किए जा रहे हैं, जैसे कि वनीकरण कार्यक्रम, जल संरक्षण योजनाएँ, और स्थायी भूमि प्रबंधन की रणनीतियाँ; लेकिन इनकी गति और प्रभावशीलता अभी भी सीमित है।

यदि वर्तमान स्थिति में ठोस नीति और सामूहिक जनसहभागिता नहीं अपनाई गई, तो आने वाले वर्षों में मरुस्थलीकरण और भी विकराल रूप ले

सकता है। राजस्थान के सतत विकास के लिए यह आवश्यक है कि मरुस्थलीकरण की चुनौती को प्राथमिकता के आधार पर संबोधित किया जाए।

4. मरुस्थलीकरण के प्रमुख कारण

मरुस्थलीकरण का तात्पर्य है – उपजाऊ भूमि का धीरे-धीरे बंजर और रेगिस्तानी स्वरूप में बदल जाना। यह एक जटिल पर्यावरणीय समस्या है, जिसका प्रभाव न केवल भूमि की उर्वरता पर पड़ता है, बल्कि इससे स्थानीय पारिस्थितिक संतुलन, जल स्रोतों, जैव विविधता और मानव जीवन पर भी गंभीर प्रभाव पड़ता है। मरुस्थलीकरण के अनेक कारण हैं, जो प्राकृतिक एवं मानवजनित दोनों प्रकार के होते हैं। (व्यास, पी. सी. 2022).

अत्यधिक वनों की कटाई: वन भूमि को कृषि, नगरीकरण, और उद्योगों के लिए साफ़ किया जाता है। इससे मिट्टी की ऊपरी परत संरक्षित नहीं रह पाती, जो वर्षा, हवा और जल के कारण आसानी से क्षरित हो जाती है। वृक्षों की जड़ों से जो जल-संवर्धन होता है, वह रुक जाता है, जिससे भूमि बंजर होने लगती है।

अनुचित और अत्यधिक कृषि गतिविधियाँ: कृषि भूमि का अत्यधिक दोहन, बिना उर्वरता बहाल किए लगातार फसल लेना, रासायनिक खादों और कीटनाशकों का अत्यधिक प्रयोग, तथा सिंचाई की गलत पद्धतियाँ मिट्टी की गुणवत्ता को नष्ट कर देती हैं। इससे भूमि धीरे-धीरे मरुस्थलीकृत होने लगती है।

अतिचार और अत्यधिक पशुपालन: ग्रामीण क्षेत्रों में चरागाहों पर अधिक संख्या में पशुओं का चराना आम बात है। इससे घास और पौधों की प्राकृतिक पुनरुत्पत्ति बाधित होती है और मिट्टी का क्षरण तेजी से होता है।

जलवायु परिवर्तन और अनियमित वर्षा: मानवजनित जलवायु परिवर्तन के कारण कहीं अधिक सूखा पड़ता है, तो कहीं बाढ़ आती है। राजस्थान जैसे शुष्क प्रदेशों में वर्षा की अनिश्चितता और जल स्रोतों का ह्रास भूमि को निर्जल एवं बंजर बना देता है, जिससे मरुस्थलीकरण की प्रक्रिया तेज होती है।

जलस्रोतों का अत्यधिक दोहन:भूजल का अत्यधिक दोहन और पारंपरिक जलस्रोतों की उपेक्षा से भूमिगत जल स्तर में भारी गिरावट आती है। इसके कारण भूमि की नमी समाप्त हो जाती है और भूमि बंजर हो जाती है।

औद्योगीकरण और खनन गतिविधियाँ: खनन, निर्माण और अन्य औद्योगिक गतिविधियाँ मिट्टी की सतह को हानि पहुँचाती हैं और स्थानीय पारिस्थितिक तंत्र को बिगाड़ देती हैं। इससे प्राकृतिक पुनरुत्पत्ति प्रक्रिया बाधित होती है और भूमि मरुस्थलीकृत होती जाती है।

निष्कर्षत : मरुस्थलीकरण केवल एक पारिस्थितिक समस्या नहीं है, बल्कि यह मानव जीवन, आजीविका और खाद्य सुरक्षा को भी प्रभावित करता है। इसके कारणों की समझ और समाधान की दिशा में ठोस नीतियाँ आवश्यक हैं, ताकि भविष्य में उपजाऊ भूमि को बचाया जा सके।

5. पर्यावरणीय, सामाजिक एवं आर्थिक प्रभाव

वर्तमान समय में मानव गतिविधियों, औद्योगीकरण और शहरीकरण की तीव्र गति ने पर्यावरण, समाज और अर्थव्यवस्था पर गहरे प्रभाव डाले हैं। इन तीनों आयामों को समझना आज की वैश्विक चुनौतियों को हल करने के लिए अत्यंत आवश्यक हो गया है। . (चौधरी, न. के. 2020).

पर्यावरणीय प्रभाव: पर्यावरणीय दृष्टि से देखा जाए तो वनों की कटाई, प्रदूषण, जैव विविधता की हानि, जलवायु परिवर्तन और प्राकृतिक संसाधनों का अंधाधुंध दोहन सबसे गंभीर समस्याएँ हैं। इससे न केवल पर्यावरणीय असंतुलन उत्पन्न होता है, बल्कि प्राकृतिक आपदाओं जैसे बाढ़, सूखा और तूफानों की आवृत्ति भी बढ़ जाती है। वायु, जल और मिट्टी के प्रदूषण से मानव स्वास्थ्य पर भी प्रतिकूल प्रभाव पड़ता है।

सामाजिक प्रभाव : सामाजिक रूप से पर्यावरणीय क्षरण का सबसे अधिक असर कमजोर वर्गों पर पड़ता

है। जल संकट, भूमि की उत्पादकता में गिरावट और प्राकृतिक आपदाओं से प्रवास, बेरोजगारी और गरीबी बढ़ती है। ग्रामीण क्षेत्रों से शहरी इलाकों की ओर पलायन बढ़ रहा है, जिससे नगरीय क्षेत्रों में जनसंख्या का दबाव, झुग्गी-बस्तियों की वृद्धि और सामाजिक तनाव पैदा हो रहे हैं। इसके साथ ही परंपरागत ज्ञान और सांस्कृतिक विरासत भी प्रभावित हो रही है।

आर्थिक प्रभाव :- आर्थिक स्तर पर पर्यावरणीय समस्याएँ कृषि, उद्योग और सेवा क्षेत्र की उत्पादकता को प्रभावित कर रही हैं। मरुस्थलीकरण और जल संकट के कारण कृषि पर निर्भर अर्थव्यवस्थाएँ कमजोर हो रही हैं। प्राकृतिक संसाधनों की कमी से उत्पादन लागत बढ़ती है और आर्थिक असमानता गहराती है। पर्यटन, मत्स्य उद्योग और वन आधारित जीविकाएँ भी क्षतिग्रस्त हो रही हैं।

निष्कर्षत : पर्यावरणीय संकट न केवल प्रकृति को प्रभावित करता है, बल्कि समाज और अर्थव्यवस्था की जड़ों को भी हिला देता है। अतः एक संतुलित और सतत विकास के लिए हमें पर्यावरण संरक्षण, सामाजिक न्याय और आर्थिक स्थिरता को एक साथ साधना होगा।

6. सरकार द्वारा उठाए गए कदम

भारत सरकार तथा राज्य सरकारों ने राजस्थान में पर्यावरणीय संकट, विशेषतः मरुस्थलीकरण की बढ़ती समस्या को देखते हुए अनेक योजनाएँ और नीतियाँ अपनाई हैं। इन प्रयासों का उद्देश्य केवल प्राकृतिक संसाधनों का संरक्षण ही नहीं, बल्कि स्थानीय लोगों की आजीविका और पारिस्थितिक संतुलन को भी बनाए रखना है।

सबसे पहले, सरकार ने राष्ट्रीय मरुस्थलीकरण नियंत्रण कार्यक्रम (National Afforestation and Eco-Development Programme) की शुरुआत की, जिसके अंतर्गत जलग्रहण क्षेत्रों का विकास, पौधारोपण तथा चरागाहों का संरक्षण किया गया। राजस्थान के शुष्क और अर्ध-शुष्क क्षेत्रों में यह योजना विशेष रूप से लागू की गई, जिससे स्थानीय वनस्पतियों को पुनर्जीवित करने और भूमि अपरदन को रोकने में मदद मिली।

राजस्थान सरकार द्वारा चलाए गए मुख्यमंत्री जल स्वावलंबन अभियान भी एक प्रभावी पहल रहा है, जिसके तहत गांवों में वर्षा जल संचयन के माध्यम से भूजल स्तर को पुनः भरने का प्रयास किया गया। इस योजना ने पारंपरिक जल स्रोतों को पुनर्जीवित करने, चेक डैम और तालाबों का निर्माण करवाने तथा जन सहभागिता को प्रोत्साहित करने का कार्य किया। इंदिरा गांधी नहर परियोजना भी मरुस्थलीकरण को रोकने का एक दीर्घकालिक समाधान है। इस परियोजना के माध्यम से थार मरुस्थल के अनेक हिस्सों में सिंचाई की सुविधा उपलब्ध करवाई गई है, जिससे भूमि की उपजाऊ शक्ति बढ़ी है और रेत के फैलाव को काफी हद तक नियंत्रित किया गया है।

वातावरण की रक्षा के लिए वन महोत्सव, पौधारोपण अभियान तथा हरित पट्टी विकास योजना जैसी पहलें भी चलाई जा रही हैं। इनके माध्यम से वनों का विस्तार कर जलवायु को संतुलित करने, तापमान को नियंत्रित करने और वन्य जीवों के आवास को सुरक्षित करने का प्रयास हो रहा है।इसके अतिरिक्त, सरकार ने जनजातीय और ग्रामीण समुदायों को पर्यावरणीय संरक्षण से जोड़ने के लिए प्रशिक्षण कार्यक्रम एवं अनुदान आधारित योजनाएँ लागू की हैं। महिला स्वयं सहायता समूहों, युवाओं और किसानों को पर्यावरणीय जागरूकता अभियान में सक्रिय भागीदारी हेतु प्रेरित किया जा रहा है। 6. (माथुर, भावना. 2021).

सरकार द्वारा भूमि उपयोग नियोजन तथा सतत कृषि प्रथाओं को बढ़ावा देने की दिशा में भी प्रयास किए जा रहे हैं। इससे न केवल भूमि की गुणवत्ता बनी रहती है, बल्कि पर्यावरणीय दबाव भी घटता है।हालांकि ये प्रयास सराहनीय हैं, परन्तु इनकी कड़ी निगरानी, स्थानीय समुदाय की भागीदारी और

नीतिगत सुधार आवश्यक हैं ताकि ये योजनाएँ दीर्घकालिक और स्थायी समाधान सिद्ध हों। यदि प्रशासनिक इच्छाशक्ति, वैज्ञानिक दृष्टिकोण और जनसहयोग एक साथ मिलें, तो राजस्थान में पर्यावरणीय संकट को काफी हद तक नियंत्रित किया जा सकता है।

7. पारंपरिक एवं स्थानीय प्रयास

भारत में पर्यावरण संरक्षण की परंपरा अत्यंत प्राचीन रही है, विशेषकर राजस्थान जैसे मरुस्थलीय क्षेत्रों में जहाँ जीवन की हर श्वास प्रकृति पर निर्भर रही है। स्थानीय समुदायों ने जल, वन और भूमि के संरक्षण हेतु समय-समय पर विविध परंपरागत उपाय अपनाए हैं जो आज भी प्रेरणादायक हैं। इन प्रयासों में सबसे प्रमुख है – जोहड़, तालाब, कुंड, बावड़ी आदि जल संचयन की परंपराएं, जिन्हें स्थानीय लोगों ने मिल-जुलकर सामूहिक श्रम से निर्मित किया। राजस्थान के अलवर, जयपुर, और झुंझुनूं जैसे जिलों में सैकड़ों वर्षों से जल संचयन के यह स्रोत न केवल जल आपूर्ति में सहायक रहे, बल्कि स्थानीय पारिस्थितिकी को संतुलित रखने में भी योगदान करते आए हैं। (जोशी, जी. एल. 2018).

बिश्नोई समाज का उदाहरण उल्लेखनीय है, जिसने सैकड़ों वर्षों पूर्व से वृक्षों और वन्यजीवों की रक्षा को धार्मिक एवं नैतिक कर्तव्य बना लिया। अमृता देवी और उनके साथियों द्वारा खेजड़ी वृक्षों की रक्षा के लिए अपने प्राणों की आहुति देना, पारंपरिक पर्यावरणीय चेतना का उत्कृष्ट उदाहरण है। इसके अतिरिक्त, थार क्षेत्र के किसान "गोचर" और "ओरण" जैसी साझा भूमि को संरक्षित रखकर वनस्पति और पशुधन के लिए सुरक्षित स्थान प्रदान करते रहे हैं।

स्थानिक लोगों की जीवनशैली में प्रकृति के साथ सामंजस्य स्पष्ट रूप से दिखाई देता है। घरों के निर्माण में स्थानीय सामग्री का प्रयोग, पशु-पालन की पारंपरिक विधियाँ, तथा पर्व-त्योहारों में वृक्षारोपण एवं जल पूजा की परंपरा – यह सभी प्रयास आज के वैज्ञानिक प्रयासों से कम नहीं हैं।

हाल के वर्षों में भी अनेक स्थानीय संगठनों और ग्रामसभाओं ने पारंपरिक ज्ञान के सहारे जल-संरक्षण, भूमि की उपजाऊ शक्ति को बनाए रखने और मरुस्थलीकरण को रोकने के लिए जन-आंदोलन खड़े किए हैं। इन प्रयासों से यह स्पष्ट होता है कि जब तक समुदाय स्वयं जागरूक नहीं होगा, तब तक किसी भी नीति का स्थायी परिणाम नहीं निकल सकता। अतः पारंपरिक ज्ञान और स्थानीय भागीदारी को नीतिगत ढांचे में स्थान देना समय की आवश्यकता है।ये प्रयास न केवल पर्यावरणीय संरक्षण की दिशा में मील का पत्थर हैं, बल्कि वर्तमान एवं भावी पीढ़ियों के लिए एक प्रेरणास्रोत भी हैं।

8. भविष्य की रणनीतियाँ और सुझाव

राजस्थान में बढ़ते मरुस्थलीकरण की समस्या को देखते हुए अब समय आ गया है कि दीर्घकालिक और ठोस रणनीतियाँ अपनाई जाएँ। यह संकट केवल पर्यावरणीय नहीं है, बल्कि सामाजिक और आर्थिक संरचना को भी गहराई से प्रभावित कर रहा है। अतः हमें ऐसी योजनाओं की आवश्यकता है जो वैज्ञानिक दृष्टिकोण के साथ-साथ स्थानीय संसाधनों और परंपराओं को भी सम्मिलित करें। सबसे पहले, वनों की कटाई पर कठोर नियंत्रण लागू किया जाना चाहिए और बड़े स्तर पर वनरोपण कार्यक्रम चलाए जाने चाहिए। विशेषकर स्थानीय प्रजातियों के वृक्ष लगाए जाएँ जो कम जल में भी पनप सकते हैं और मिट्टी के क्षरण को रोक सकें। इसके अतिरिक्त, जल संरक्षण की पारंपरिक पद्धतियों जैसे जोहड़, कुंडी और बावड़ियों को पुनर्जीवित करना आवश्यक है, जिससे वर्षा जल का संचयन हो सके और भूजल स्तर संतुलित बना रहे।

खेती की पारंपरिक पद्धतियों में बदलाव लाकर सूखा प्रतिरोधी फसलों को बढ़ावा दिया जाना चाहिए। किसानों को ऐसी तकनीकों से अवगत कराया जाना चाहिए जो कम जल में अधिक उत्पादन दे सकें।

'वाटर शेड' विकास कार्यक्रमों को गाँव स्तर पर लागू किया जाना चाहिए ताकि स्थानीय समुदाय जल और मिट्टी संरक्षण में सक्रिय रूप से भाग ले सकें। साथ ही, जन जागरूकता अभियान चलाकर लोगों को मरुस्थलीकरण के दुष्परिणामों से अवगत कराना भी आवश्यक है। स्कूलों और महाविद्यालयों में पर्यावरण शिक्षा को व्यावहारिक रूप से जोड़ा जाना चाहिए जिससे नई पीढ़ी पर्यावरणीय उत्तरदायित्व को समझे। (सैनी, रमेश च. 2022).

सरकार को चाहिए कि वह दीर्घकालिक नीति बनाए जिसमें भूमि उपयोग की योजना, जल संसाधनों का समुचित प्रबंधन, और सतत कृषि को मुख्य रूप से स्थान मिले। साथ ही, अंतरराष्ट्रीय संस्थानों और पर्यावरणीय संगठनों के सहयोग से तकनीकी सहायता ली जा सकती है जिससे सटीक डाटा, उपग्रह मानचित्रण और कृत्रिम बुद्धिमत्ता (AI) जैसे आधुनिक साधनों का उपयोग करके मरुस्थ-लीकरण की दिशा और गति को समझा जा सके। अंततः, केवल सरकारी प्रयासों से यह संकट नहीं सुलझेगा, जब तक स्थानीय समुदाय, स्वयंसेवी संगठन और नागरिक समाज सामूहिक रूप से आगे न आएँ। इस प्रकार, यदि समय रहते समन्वित और सतत रणनीतियाँ अपनाई जाएँ, तो राजस्थान के मरुस्थलीकरण की गति को रोका जा सकता है और आने वाली पीढ़ियों को एक स्थिर, समृद्ध और हरित भविष्य प्रदान किया जा सकता है। (जैन, अनीता. 2023).

9. निष्कर्ष : वर्तमान परिप्रेक्ष्य में यह निर्विवाद सत्य है कि मानव और प्रकृति के मध्य संतुलन के अभाव ने अनेक जटिल समस्याओं को जन्म दिया है। पर्यावरणीय असंतुलन, संसाधनों का अंधाधुंध दोहन, औद्योगीकरण एवं शहरीकरण की अनियंत्रित गति ने न केवल प्राकृतिक तंत्र को प्रभावित किया है, बल्कि मानवीय जीवन को भी संकट में डाल दिया है। विशेष रूप से जिन क्षेत्रों में भौगोलिक स्थिति पहले से ही संवेदनशील रही है, वहाँ इस संकट की तीव्रता और अधिक बढ़ गई है। उदाहरणस्वरूप राजस्थान जैसे शुष्क और अर्ध-शुष्क क्षेत्रों में मरुस्थलीकरण, जल संकट, वनस्पति क्षरण, तापमान में वृद्धि एवं मृदा अपरदन जैसी समस्याएं तेजी से बढ़ रही हैं। (सिंघवी, महेश कुमार. (2024).

इस समग्र अध्ययन से यह स्पष्ट हुआ है कि केवल प्राकृतिक कारण ही नहीं, बल्कि मानवजनित कारक – जैसे भूमिपरिवर्तन, अत्यधिक भूजल दोहन, परंपरागत जल स्रोतों की उपेक्षा, तथा जनसंख्या वृद्धि – भी इस संकट के लिए जिम्मेदार हैं। पर्यावरणीय समस्याएं अब केवल वैज्ञानिक या तकनीकी विषय न रहकर सामाजिक, आर्थिक एवं सांस्कृतिक स्तरों पर भी चुनौती बन गई हैं। अतः समाधान भी केवल तकनीकी उपायों तक सीमित नहीं हो सकते, बल्कि उन्हें व्यापक नीति, जनजागरूकता, शिक्षा और सहभागिता पर आधारित होना होगा।

समाधान की दिशा में पारंपरिक ज्ञान की पुनःस्थापना, स्थानीय समुदायों की सक्रिय भागीदारी, जल-संरक्षण तकनीकों को अपनाना, सतत कृषि पद्धतियों का विकास, और सरकार की ठोस नीतिगत हस्तक्षेप अत्यंत आवश्यक हैं। साथ ही, यह भी अनिवार्य है कि युवाओं को पर्यावरणीय शिक्षा से जोड़कर उनमें संवेदनशीलता उत्पन्न की जाए, ताकि वे न केवल समस्या को समझें बल्कि समाधान का हिस्सा बनें।

अंततः यह कहा जा सकता है कि यदि हम अभी भी सचेत न हुए, तो भविष्य की पीढ़ियों को एक अत्यंत संकटग्रस्त वातावरण विरासत में मिलेगा। किंतु यदि आज हम समन्वित प्रयास करें – जिसमें नीति-निर्माता, वैज्ञानिक, शिक्षक, किसान, विद्यार्थी और आम नागरिक समान रूप से भाग लें – तो न केवल पर्यावरणीय संतुलन को पुनःस्थापित किया जा सकता है, बल्कि एक हरित, समृद्ध और स्थायी भविष्य का निर्माण भी संभव है। यही इस शोध या

विमर्श का केंद्रीय निष्कर्ष है – कि पर्यावरण की रक्षा न केवल एक दायित्व है, बल्कि यह हमारे अस्तित्व से जुड़ी अनिवार्यता भी है।

राजस्थान के थार क्षेत्र में मरुस्थलीकरण की गति अत्यंत तीव्र है। इसके दुष्परिणामस्वरूप उपजाऊ भूमि बंजर होती जा रही है, पारंपरिक कृषि प्रणाली संकट में है और ग्रामीण पलायन की समस्या भी विकराल रूप ले रही है। साथ ही, मृदा अपरदन, जल की कमी, वनस्पति क्षरण, तापमान वृद्धि तथा खाद्य सुरक्षा पर भी इसका प्रतिकूल प्रभाव पड़ रहा है। इससे यह सिद्ध होता है कि मरुस्थलीकरण का संकट केवल भौगोलिक न होकर सामाजिक, आर्थिक तथा सांस्कृतिक आयामों से भी जुड़ा हुआ है।

इस संकट से निपटने हेतु राज्य एवं केंद्र सरकार द्वारा कई प्रयास किए जा रहे हैं, जैसे 'राष्ट्रीय मरुस्थलीकरण नियंत्रण कार्यक्रम', जल संरक्षण योजनाएं, वनीकरण कार्यक्रम तथा जनजागरूकता अभियान। परंतु जब तक स्थानीय समुदायों की सक्रिय भागीदारी, पारंपरिक ज्ञान का प्रयोग, तथा सतत विकास की अवधारणाओं को नहीं अपनाया जाता, तब तक यह समस्या बनी रहेगी।

समापन में यह कहा जा सकता है कि मरुस्थलीकरण की चुनौती से निपटना केवल नीतियों अथवा तकनीकी उपायों से संभव नहीं है, बल्कि इसके लिए सामूहिक सामाजिक चेतना, पर्यावरणीय शिक्षा तथा सतत भागीदारी की आवश्यकता है। यदि अभी ठोस कदम नहीं उठाए गए, तो भविष्य में राजस्थान की एक बड़ी भूमि मरुस्थल में परिवर्तित हो सकती है। अतः यह हम सभी का कर्तव्य है कि हम मरुस्थलीकरण को रोकने के लिए व्यक्तिगत व सामूहिक स्तर पर ठोस प्रयास करें, जिससे भावी पीढ़ियों को एक संतुलित और समृद्ध पर्यावरण मिल सके।

संदर्भ सूची :

1. शर्मा, आर. के. (2019). राजस्थान में मरुस्थलीकरण की स्थिति और नीतियाँ. पर्यावरण अध्ययन जर्नल, 15(2), 45–52.
2. मीणा, एस. एल. (2020). थार मरुस्थल का फैलाव और इसके दुष्प्रभाव. भारतीय भूगोल समीक्षा, 22(1), 33–40.
3. गुप्ता, म. (2021). जलवायु परिवर्तन और मरुस्थलीकरण: राजस्थान की चुनौतियाँ. पर्यावरण विज्ञान शोध पत्रिका, 18(3), 56–63.
4. व्यास, पी. सी. (2022). राजस्थान के शुष्क क्षेत्रों में जल संकट और वनस्पति परिवर्तन. जैवविविधता और पारिस्थितिकी जर्नल, 11(1), 20–28.
5. चौधरी, न. के. (2020). मरुस्थलीकरण रोकथाम हेतु नीति और कार्यक्रम. ग्रामीण विकास पत्रिका, 14(4), 72–80.
6. माथुर, भावना. (2021). थार के ग्रामीण जीवन पर मरुस्थलीकरण का प्रभाव. सामाजिक विज्ञान अध्ययन, 19(2), 91–98.
7. जोशी, जी. एल. (2018). राजस्थान में मृदा अपरदन और मरुस्थलीकरण. भारतीय पर्यावरण शास्त्र, 10(3), 40–47.
8. सैनी, रमेश च. (2022). मरुस्थलीकरण नियंत्रण में जल संरक्षण की भूमिका. जल प्रबंधन समीक्षा, 9(1), 11–18.
9. जैन, अनीता. (2023). पारिस्थितिक असंतुलन और राजस्थान में भूमि क्षरण. पर्यावरणीय विकास शोध, 13(2), 67–75.
10. सिंघवी, महेश कुमार. (2024). राजस्थान में मरुस्थलीकरण के कारण, प्रभाव और समाधान. भूगोल एवं पर्यावरण समीक्षा, 17(1), 58–66.

•